लेख

परम्परा व आधुनिकता के बीच -अतिया हुसैन

रक्षंदा जलील

अवध के परम्परावादी, मुसलमान परिवार में जन्मी, उदारवादी, अंग्रेज़ी शिक्षा द्वारा गढ़ी अतिया हुसैन को लेखन, परम्परा व आधुनिकता का अनोखा मिश्रण है। उस दौर में अंग्रेज़ी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर लिखना जिस समय गिनी-चुनी महिलाएं, विशेषतः मुसलमान महिलाएं लिखने का साहस कर पाती थीं, अतिया ने अपने लेखन से एक बहुसांस्कृतिक, अनेकवादी, और समन्वयवादी दुनिया की तस्वीर बनाई जो हमें आज भी प्रेरित करती है। अपने उपन्यास *सनलाइट ऑन अ ब्रोकन कॉलम* तथा कहानी संग्रह *फीनिक्स फ्लैड* में वे एक टूटते समाज का आधुनिक, नारीवादी व वामपंथी रंगावली से मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। उनके लेखन की खूबसूरती और सशक्तता कहानी लेखन में औरताना परम्परा शैली को मज़ेदार और अलंकृत करने वाली है जिसके चलते "विरागो मॉडर्न क्लासिक सीरीज़" जिसमें महिला कहानीकारों के काम को पुनर्प्रकाशित किया जाता है, में उनके दो संग्रह प्रकाशित किये गये हैं।

अतिया हुसैन के लेखन की बात करते समय हम दो बातों पर विशेष ध्यान देंगे— पहली, अब समय आ गया है कि हम नारीवाद की परिभाषा को पुनर्भाषित करें। मेरे विचार में अपने फैसले खुद लेने की क्षमता औरत को सशक्त बनाती है। दूसरी, हमें इस बात पर भी पुनर्विचार करना चाहिए कि क्या वाकई सम्पन्नता में पैदा होने या परवरिश पाने वाले दुखों से कोसों दूर रहते हैं। यहां पर मैं अतिया हुसैन के अंग्रेज़ी लेखन की बात करते हुए उन्हें उनकी समकालीन लेखिकाओं के साथ जो उनकी भावनाओं के साथ इत्तिफाक रखती थीं परन्तु स्वयं उर्दू में लिखती थीं तुलना करने का भी प्रयास करुंगी।

शुरूआत में अतिया हुसैन की पुस्तक, *फीनिक्स फ्लैड* की बारह कहानियों से करूंगी जिन्हें अनीता देसाई ने स्वतंत्रता-पूर्व समय की "इमारत" का नाम दिया है। इस संकलन की प्रमुख कहानी *फीनिक्स फ्लैड* एक ऐसी बुज़ुर्ग महिला की दास्तान है जो बंटवारे के समय अपना घर छोड़कर जाने को तैयार नहीं है। उसका परिवार उसे पीछे छोड़कर चला जाता है। डरी हुई और अकेली यह महिला उसका घर जलाने आई भीड़ को फटकारती हुई आगाह करती है, "खबरदार, जो किसी ने भी गुड़ियाघर पर पैर रखा। खबरदार।" ठीक इसी तरह *द फर्स्ट पार्टी* एक युवा स्त्री की पति की पाश्चात्य दुनिया में अपनी जगह खुद की तलाशने की मार्मिक दास्तान है।" *टाइम इज़ अनरिडीमेबल* में एक औरत विदेश से अपने पति के लौटने का बरसों इंतज़ार करती है जो वापसी पर उसे छोड़कर चला जाता है क्योंकि वह उससे प्यार नहीं करता।

अतिया हुसैन की हरेक कहानी सघन व अपने आप में एक आत्म-निर्भर कथन है। उनके लेखन में सस्पष्टता, पैनापन व नफ़ासत है जो उस दौर की अंग्रेज़ी लेखिकाओं की शैली से बिल्कुल फ़र्क़ है। "इज़्ज़त" व "शर्म" जैसे शब्दों के मायने जो उस दौर के ऊंचे व नीचे सभी समाजों

में एक समान थे पर भी हुसैन का ध्यान था। एक अमीर घराने में अपनी पैदाइश के प्रति ज़िम्मेदारी व खुशी के एहसास के साथ-साथ एक औरत होने की उमंग उनके लेखन में उभरकर आती है। बड़े घर की शान-ओ-शौकत और नौकरों के तंग मकानों के फासलों को कम करती अतिया हुसैन अपनी हर कहानी में बार-बार यही कहती है कि चारदीवारी के अंदर दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं होता। पैसे और भौतिक सुविधाओं के अंतर बड़े होते हैं पर दोनों परिवेशों में विविधता, समन्वयवादिता और समावेश का जश्न और उल्लास समान रूप से व्याप्त होता है।

अपनी मां, भाई व बहन के साथ अतिया

अतिया की कहानियों में मज़दूर वर्ग और मेहनतकश तबके को महिमामंडित करने को कोई भी प्रयास नहीं किया गया है। गरीबी का एहसास है पर उसका चित्रण सहजता और सूक्ष्म निरीक्षण के साथ किया गया है जो करीब से जानने-समझने से ही आ सकता है। अमीरों के घर के पिछवाड़े में रहने वाले परिवारों के रहने-खाने-पहनने, उनकी मेहनत की कमाई से अर्जित सामान का जींवत और विस्तृत उल्लेख अतिया हुसैन की कहानियों में दिखाई देता है। जैसा कि अनिता देसाई लिखती हैं- *"उस समय का समाज जड़वत था- सामन्तवादी समाज। ज़मीन की मिल्कियत ज़मींदार की थी- मज़दूरी मज़दूर की— उनसे क्या-कैसे, कितना निचोड़ लिया जाता था? कैसे औरतें अलग-थलग रहती थीं- उनके हक़ कौन से थे, कौन से नहीं? बुजुर्गों पंडितों और ज़मीदारों को मान-सम्मान दिया जाता था और इस पदानुक्रम और इसकी स्थिरता को डिगाना अक्षम्य अपराध था।"*

लगभग हुसैन की हर कहानी में परम्परा व आधुनिकता या पाश्चात्य और लम्बे समय से चले आ रहे जीने के तरीकों के बीच संघर्ष में हुसैन की सहानुभूति, परम्परा के साथ थी जो उनके अनुसार अधिक मानवतावादी थी। यहां धनी सबल वर्ग कमज़ोर व गरीबों की देखरेख करने की ज़िम्मेदारी निभाता था। इस लिहाज़ से वे अपनी समकालीन प्रगतिशील और प्रखर लेखिकाओं जैसे इस्मत चुगताई व रशीद जहां से अलग थीं। रशीद जहां के लेखन में अन्यायी समाज को बदलने के लिये मार्क्सवादी समझ अहमियत रखती थी। इस्मत चुगताई अपनी कलम से पारम्परिक नैतिकता और समाज में औरत के निम्न दर्जे को चुनौती दे रही थीं। वे अधिक मुखर, और बेबाक थीं- उनकी शैली औरताना तहज़ीब, यहां तक की साहित्यिक तहज़ीब की भी पारम्परिक छवि का अनुसरण नहीं करती थीं।

अगर अतिया हुसैन की तुलना किसी से समानान्तर रूप से की जा सकती है तो वह कुर्रतुलऐन-हैदर। उनका जन्म भी धनाढ़य परिवार में हुआ था और जिनके परिवार में भी औरतों की शिक्षा पर ज़ोर दिया जाता था। हैदर उर्दू और अंग्रेज़ी दोनों जबानों में लिखती थीं। प्रगतिशील और उग्र लेखक वर्गों ने हैदर की पाश्चात्य प्रभाव वाली परवरिश को नकारते हुए उन्हें खोए हुए

समाज की अमीरी और महिमा का गुणगान करने का आरोप लगाया है। परन्तु अतिया हुसैन इस प्रखर ईर्ष्या से बची रहीं क्योंकि वे गुज़रे वक्त का बखान नहीं करतीं। वे उसका जश्न मनाती हैं जो किसी समय मौजूद था पर वापस उसे लौटाने या उसका दंभ भरने की कोशिश नहीं करती। अंग्रेज़ी के इस्तेमाल ने उन्हें लिखने और अभिव्यक्त करने की आज़ादी व जगह दोनों प्रदान की है जिसकी उर्दू में लिखने वाले कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उस समय में अंग्रेज़ी में लिखने और पश्चिमी साहित्य में प्रकाशित होना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि थी।

अतिया हुसैन अपने उपन्यास *सनलाईट ऑन अ ब्रोकन कॉलम* में एक ऐसी दुनिया का संवेदना विहीन नज़ारा प्रस्तुत करती हैं जहां सत्ता, सहूलियत और दर्जा एक हाथ से दूसरे तक खिसकते-फिसलते रहते हैं। अतिया के पिता शाहिद हुसैन किदवई गदिया, ज़िला बाराबांकी के तालुकदार और उपनिवेशतावाद-विरोधी पश्चिमी शिक्षा प्राप्त भारतीय थे। उनकी माता काकोरी के लेखक-कवि, नामचीन परिवार से थीं। अतिया के परिवार में सरोजिनी नायडू, अली इमाम, अब्बास अली बेग, मोतीलाल, जवाहरलाल नेहरु, अतिया फैज़ी व सर सुल्तान अहमद का आना-जाना था। इनके प्रभाव से अतिया का रूझान स्वदेशी आंदोलन के प्रति हो गया हालांकि उनका परिवार ब्रिटिश इण्डिया असोसियेशन का सक्रिय सदस्य था जो तालुकदारों के एक व्यापार संघ की तरह था। इसके अलावा 1857 के गदर के बाद लखनऊ ही तहज़ीब व संस्कृति का गढ़ समझा जाने लगा।

अतिया ने जीर्ण-शीर्ण होती संस्कृति की विरासत को अपने लेखन के ज़रिये दोबारा जीवनदान दिया। इस काल्पनिक दुनिया की विविधता इतनी व्यापक है कि भिखारी भी यहां अल्लाह व भगवान दोनों के नाम पर दक्षिणा मांगते हैं, एक निसतांन पुरुष पैगम्बर व हुनमान से मन्नत मानता है और अतिया के जैसे परिवार होली-दीवाली और ईद-शब्बेरात को उत्साहित हो मनाते हैं। यहां खान-पान की पाबंदियां दोस्ती में दरार नहीं डालती। सालों-साल बाद भी अतिया हुसैन के लिये यह स्वीकारना मुश्किल था कि मज़हब के नाम पर अलगाव संभव है। उनका कहना था, "वह उनकी ज़िंदगी थीं, यह हमारा जीवन था और दोनों दोस्ती में साथ जुड़ जाते थे। हम ब्याह, जन्म मरण और त्योहारों में साथ-साथ थे।'"

उनका यह विश्वास उनके उपन्यास *सनलाइट ऑन अ ब्रोकन कॉलम* में गहराता है जिसमें एक अनाथ लड़की लैला जिसकी परवरिश एक अमीर घराने में हुई है, एक दिन सिनेमाघर और अंग्रेज़ी नाटक छोड़कर सत्याग्रहियों के साथ हो लेती है। उपन्यास की शुरूआत में एक किरदार कहता है- "एक दिन तुम अपने जन्म और परवरिश के लिए शर्मिंदा होगी, उनका गुमान नहीं कर पाओगी।" लैला भी हुसैन की तरह अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ी है और उसने लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर किया है। उसका, महलनुमा घर जिसमें रिश्तेदारों व नौकरों की फौज है एक "जींवत प्रतीक" है। 1948 के पांच साल बाद जब वह वापस लौटती है तो यह घर खंडहर बन चुका है।

अतिया लिखती हैं- "इस घर ने एक जीवन शैली को दफ़न करके दूसरी अपना ली है। इस क्षय में मैंने अपने जीवन के सभी वर्ष देखें हैं- वे साल जिनमें एक जीवन जीने का तरीका विकसित हुआ था और वे कुछ साल जिनमें ये खत्म हो गया है। पर अतिया के उपन्यास को जो बात अन्य बंटवारे पर आधारित किताबों से अलहदा करती है वह है- कड़वाहट का अभाव। अतिया की कहानी में इस बात का स्पष्ट चित्रण व समझ है कि कुछ मुसलमान परिवारों ने पाकिस्तान जाना मंजूर क्यों किया व कुछ यहीं के होकर क्यों रह गये। दोस्ती और सदभाव संवेदना विहीन समझ उनके लेखन में उभर कर आती है। उनके मन में सवाल और शक भी है पर वह उनसे ऊपर उठ जाती हैं। संघर्ष, चाहे वह नियति के विरुद्ध हो या पीड़ा के और ज़िंदगी के प्रति सकारात्मक स्वीकृति उनकी लिखी कहानियों में एक दुनियादारी का पुट देकर उन्हें अनेकता और बहुसांस्कृतिकता का वसियतनामा बनाती है।

रक्षंदा जलील *साहित्य, संस्कृति व समाज संबंधी मुद्दों पर लिखती हैं।*